भाई महाराज सिंघ

(सिंघापुर के बंदीखाने में शहीद होने वाले गुरसिख)

-डॉ. कुलदीप सिंघ

दशम पिता गुरू गोबिंद सिंघ साहिब ने खालसा के रूप में जिस कौम की सृजना की थी उस का मॉडल, संत सिपाही के रूप में जिस कौम की सृजना की थी उस का मॉडल, संत सिपाही के रूप में उन का अपना प्रभावशाली व्यक्तित्व था। उन की इसी आदर्श प्रेरणा के फलस्वरूप जब कभी भी देश कौम पर विपत्ति आई, गुरसिखों ने आगे बढ़ कर अपना सब कुछ दांव पर लग दिया। निहाल सिंघ, जो विशेष कर के भाई महाराज सिंघ के नाम से प्रसिद्ध थे, ऐसे ही सच्चे व निर्मल जीवन वाले गुरसिख थे। उन्होंने लाहौर पर केसरी निशान की जगह पर यूनियन जैक को फहराने से रोकने के लिए अपना सब कुछ कुर्बान कर दिया। पंजाब के बहादुर सिखों ने अग्रेजों के सामने आसानी से ही घुटने नहीं थे टेके। फिरंगी, सारे हिंदुस्तान को सर करने के उपरांत, पंजाब की ओर मुड़े। फिर भी उनको यहां ने केवल अपना अधिकार स्थापित करने में ही नानी यादी आ गई, बल्कि अपने अनाधिकार के कारण भी वे एक दिन के लिए चैन से न बैठे सके। उन की गुलामी व अधीनता को पंजाबियों ने मूलत: ही स्वीकार नहीं किया। 1849 से 1947 तक, 98 वर्ष तक उन की लड़ाई कभी धीमी, कभी तेज, कभी गुरीला और कभी प्रत्यक्ष, किसी न किसी रूप में जारी रही। भाई महाराज सिंघ इसी लड़ाई की एक बहुमूल्य कड़ी हैं।

भाई महाराज सिंघ जी सच्चे अर्थो में संत सिपाही थे। उनमें सच्चे नेता बनने के सारे गुण मौजूद थे। उन की निष्काम वृत्ति और संत स्वरूप ने, अमीर गरीब सब को सिख राज्य के अंतिम वर्षो में अंग्रेजों व डोगरों की कुटिल चालों के विरुद्ध कमर कसने को प्रेरित किया। जितना समय वे जिंदा रहे, चाहे स्वतंत्र रूप में या पंजाब से हजारों मील दूर सिंघापुर की धरती पर अंग्रेजों की कैद में, अंग्रेज सरकार उनके नाम से कांपती रही। उस समय के जलंधर के अंग्रेजों डिप्टी कमिशनर वैनिष्टार्ट का कहना था कि भाई साहिब कोई साधारण व्यक्ति नहीं। स्थानीय लोगों में उन का दर्जा वही है जो बहुत उत्साही व गर्मजोश इसाइयों के लिए ईसा मसीह का है। उन की साहसपूर्ण गाथाएं, हजारों लोगों ने देखी-सुनी थीं और लोगों को उनपर उतना ही विश्वास है जितना किसी पीर-पैगंबर की करामातों पर होता है। उस समय के पंजाब बोर्ड ऑफ एडमिनिस्टरेशन के सचिव, पी मैलविल ने भी वैनिस्टार्ट के उपरोक्त विचारों की पुष्टि की है। यह ठीक है कि सिखी में करामात नाम कहर का है, पर आम लोगों में उन के करामाती होने की बात फैलना, एक जिम्मेवार अधिकारी द्वारा उसकी पृष्टि करना, इस बात का द्योतक है कि वे अपने सच्चे व निर्मल, आचरण तथा जीवन एवं दृढ़ इरादे के फलस्वरूप अनहोनी को होनी में बदल देते थे। जान हथेली पर रख कर, गुरू के नाम का आसरा ले कर किसी अकेले व्यक्ति का लाखों शत्रुओं से टकरा जाना, किसी करामात से कम भी तो नहीं। जलंधर के उस समय के कमिशनर मैकलोड के अनुसार ''भाई साहिब कई पक्षों से बहुत महत्वपूर्ण व्यक्तित्व के मालिक थे। उनके पास अति का आत्मविश्वास और बुद्धिमता थी। वे इतने गहर गंभीर व बुद्धिमान थे कि उन की मन की बात का केवल उनको ही पता होता था या उस के

बारे में किसी को तब ही पता चलता था जब वह उस को व्यवहारिक रूप दे लेते थे। वे न केवल कोई योजना बना सकते थे, बल्कि उस योजना को भिन्न-भिन्न व्यक्तियों की सहायता से सफल बनाने की योग्यता भी रखते थे। उनके सच्चे व उच्च आचरण से कोई भी प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता था। सिखों में ही नहीं, हिंदुओं और मुसलमानों में भी उन का अच्छा मान सम्मान था। वैनिस्टार्ट को उन के बारे में ये शब्द कहने पड़े, मैं तो चाहता था कि इस यक्ति के गौरव को नजरअंदाज कर दूं और इस से आम कैदी की तरह व्यवहार करूं। पर इस के निर्मल धार्मिक जीवन के सामने मेरी ऐसा करने की हिम्मत नहीं और न ही मैं ऐसा करके महान सिख कौम की करोपी मोल ले सकता हूं।''

सरदार निहाल सिंघ अर्थात भाई महाराज सिंघ जी के प्रारंभिक जीवन के बारे में बहुत ज्यादा पता नहीं लगता। प्राचीन इतिहास को देखने पर केवल यही पता चलता है कि वे बाबा सिंघ जी नौरंगाबाद वालों के सेवक थे। बाबा बीर सिंघ जी का महाराजा रणजीत सिंघ के समय में व उस के बाद भी सिखों में अच्छा मान सम्मान था। बाबा जी के डेरे समय में व उस के बाद भी सिखों में अच्छा मान सम्मान था। बाबा जी के डेरे पर आने से पूर्व, वे अपने गांव रुबे के समीप ठीकरीवाले के निर्मलों के डेरे पर भी कुछ समय तक टिके रहे। बाबा जी के आदर्श व्यक्तित्व पर निहाल सिंघ जी इतने प्रभावित हुए कि वे तन मन से डेरे की ही हो कर रह गए। उन की निष्काम सेवा, मीटी सुरीली आवाज व रूहानी शोहरत ने जल्द ही सब का मन मोह लिया। उन को सम्मान सहित सारे लोग महाराज जी कह कर बुलाया करते थे। यह महाराज संबोधन बाद में जा कर अंग्रेजों के लिए महाराज सिंघ बन गया। महाराजा रणजीत सिंघ के अचानक कालवास हो जाने के उपरांत सिख राज्य जिस तेजी से डोगरों व अंग्रेजों की कुटिल नीति का शिकार हुआ, उस ने हर सच्चे सिख को चिंतातुर कर दिया। बाबा जी भी एक सच्चे पंथ दर्दी की भांति यह तमाशा शांतिपूवर्क नहीं देख सकते थे। उन्होंने डोगरों की कुटिल चालों को नकेल डालने के लिए सरदारों को संगठित करना शुरु कर दिया। रूहानी कृपा का यह केंद्र अब सुझवान व पंथ दर्दी शूरवीरों से भरने लगा। डोगरे इस बात को कब सहन कर सकते थे। राजा हीरा सिंघ, जो नाबालिंग दलीप सिंघ की राजगद्दी पर बैठते समय राजकाल के सारे अधिकार संभाले बैठा था, डेरे पर हो रही इस सरगर्मी को दबाने के लिए सेना चढ़ा कर ले आया। बाबा बीर सिंघ की इस सेना के साथ हुई मुठभेड़ मे शहीद हो गए।

बाबा जी की शहीदी की खबर जल्द ही दूर-दूर तक फैला गई। लोगों के जज़्बात भड़क उठे। बाबा जी जैसे गुरसिख को हाथ डालने वाले राजा हीरा सिंघ को जल्द ही अपने किये का फल मिल गया। बाबा जी की शहीदी के उपरांत इस डेरे की अगवाई भाई महाराज सिंघ जी ने संभाल ली। 1846 की लड़ाई तक वे इस डेरे पर रह कर जैसे तैसे अपने कर्तव्य को निभाते रहे। उसके पश्चात उन्होंने देख लिया कि अब पानी पुल से निकल गया है। अंग्रेज शासक से सीधे दो हाथ करने होंगे। उन्होंने नौरंगाबाद छोड़ कर अमृतसर आ टिकाना किया और गांव में दौरा करके अपने मिशन की पूर्ति हेतु लोगों को संगठित करना आरंभ कर दिया।

उनकी सरगर्मियों का परिणाम था कि प्रेमा साजिश रची गई परन्तु दुरभाग्य वश, इस साजिश का भेद खुला। इस साजिश का उद्देश्य रैजीडैंट हैनरी लारस, देश द्रोही डोगरों तथा उनके साथियों को 21 अप्रैल 1847 को

शालामार बाग में होने वाली एक मीटिंग के समय कत्ल करना था। इस लाहौर दरबार के कुछ प्रभावशाली सिख सरदार व महारानी जिंदा शामिल थीं। इन लोगों को न केवल भाई महाराज सिंघ जी का आशीर्वाद प्राप्त था बल्कि उन्होंने इन को अपने आशीर्वाद स्वरूप एक कृपाण भी प्रदान की थी। दुर्भाग्य से इस साजिश का अंग्रेजों को समय पर पता चल गया। उन्होंने साजिश करने वालों को पकड़ने के लिए करड़ी कारवाई आरंभ कर दी। सारे पंजाब में दमन चक्र शुरू हो गया। दोशियों और उन को पनाह देने वालों को कैद करने और उन की जायदाद कुर्क करने के आदेश सरकार ने जारी कर दिए।

स्वाभाविक था कि भाई महाराज सिंघ जी की ओर भी सरकार का ध्यान जाता। अंग्रेज रैजीडैंट ने भाई साहिब के बहुत से साथी और निज़ी सेवक पकड़ लिए। भाई साहिब का पता टिकाना पूछने के लिए इन को कई प्रकार के कष्ट दिए गए। पर जब सख्त मार पीट से भी किसी ने कुछ न बताया तो रैजीडैंट ने सारे माझा को छान मारने को आदेश दिया। अमृतसर में भाई साहिब की सारी जायदाद ज़प्त कर ली गई। उन को पकड़ने के लिए दस हज़ार रूपए का इनाम रखवा गया। सरकार का कोई भी कदम भाई साहिब को अपनी राह पर आगे बढ़ने से न रोक सका। वह गांव – गांव में अपने मिशन की पुर्ति हेतु भ्रमण करते रहे।

प्रेमा साजिश के असफल होने के तुरंत पश्चात, दीवान मूल राज ने मुल्तान में अंग्रेजों के विरूद्ध बगावत कर दी। दीवान मल का होनहार लड़का दीवान मूल राज अपने पिता ही भांति ही सिख राज को दिलो जान से प्यार करता था। कुदरती बात थी कि अंग्रेजों की कुटिलनीति के कारण उस के सबंध अंग्रेजी सरकार से बिगड़े। अप्रैल 1848 में जब दीवान मूल राज ने, अंग्रेजी सरकार के विरूद्ध खुले आग बगावत की तो महारानी जिंदां ने उस की हर संभव मदद की । अंग्रेजों ने उस को देश निकाला दे दिया। इस अवसर को उचित जान कर भाई साहिब ने माझा में बगावत का झंडा खड़ा कर दिया। उन्होंने दुआबा की उत्तर दिशा की ओर भी कई जिलों का दौरा किया। हर स्थान पर उनका अच्छा स्वागत हुआ। हजारों लोग उनके झडे के नीचे एकत्र हो गए। कुदरती था कि दीवान मूल राज इस अवसर पर उन का सहयोग लेता। उस ने भाई साहिब के पास स्वयं अपने आदमी भेजे। संदेश मिलने पर भाई साहिब ने मुल्तान की ओर कूच कर दिया।

भाई साहिब के समर्थन व सरगर्म सहायता के कारण दीवान मूल राज की बगावत अंग्रेजों के लिए बहुत बड़ी सिरदर्दी बन गई। बागियों के हौंसले बुलंद हो गए। सारी तरफ यह अफवाह फैल गई कि महाराजा दलीप सिंघ को अंग्रेजी प्रभाव से मुक्त करके मुल्तान पहुंचा दिया गया है। अंग्रेजों ने भाई साहिब को पकड़ने के लिए अपनी सरगर्मी और तेज कर दी। कैप्टन कौकस नाम का एक अंग्रेज दो अतिरिक्त पल्टनें, एक रैजीमैंट व तोपखाने सहित उनके पीछे लगाया गया। सरकार ने आदेश दिया कि जो भी भाई साहिब को पनाह देगा उसके नाक, कान काट दिए जायं और जायदाद कुर्क कर ली जाय। भाई साहिब हर स्थाान पर अंग्रेजी पुलिस व सेना के संग छिपा – छिपाई खेल कर हाथ से निकल जाते। कई बार अंग्रेजों को भाई साहिब के पकड़े या मारे जाने का गुमान हुआ परंन्तु हर बार पहचान कराने के पश्चात उनकी आशओ पर पानी फिर जाता। एक बार बाढ़ की चपेट में आई चनाब नदी को पार करते समय उनके नदी में डूब जाने की खबर बहुत विश्वास से अंग्रेज रैजीमैंट को दी गई पर कुछ ही समय के उपरांत इस के झठे होने का पता लगा। सरकार को बहुत नमोशी हुई।

मुल्तान की बगावत के उपरांत भाई साहिब ने जसंव और कट्ट लहर के राजपूत राजाओं, ऊना के बाबा विकरम सिंघ, करतारपुर के लधा सिंघ, नूरपुर के राम सिंघ और रंघड़ नंगल के लाल सिंघ व अरजन सिंघ को साथ ले कर नये सिरे से अंग्रेजों के विरूद्ध बगावत को संगठित किया। इस बगावत को भी अंग्रेजों ने सख्ती से कुचल दिया।

इसके उपरांत भाई साहिब ने अटारी वाले सरदारों की सहायता करके अंग्रेजों के विरुद्ध नई लहर चलाई। सरदार चतर सिंघ अटारी वाला इस बगावत के अग्रणी बने। राम नगर, चेलियां वाला तथा गुजरात की सभी लड़ाईयों में भाई महाराज सिंघ अपनी काली घोड़ी पर बैठ कर बहादुरी से लड़े। हजारों वालंटीयर उन की प्रेरणा के अधीन इन लड़ाईयों में शामिल हुए। चेलियां वाला में अंग्रेजों को जो निराशा भरी हार हुई वह अपनी मिसाल आप ही थी। अंग्रेज कमांडर गफ को इस हार पर अंग्रेजों ने वापिस विलायत बुला लिया और उस की जगह पर नेपीअर को भेजा। इस सफलता का सेहरा अन्य के साथ भाई साहिब को भी जाता है।

गुजरात की लड़ाई इस बगावत की अंतिम लड़ाई थी। अपने सीमित साधनों के कारण सिख यहां पर हार गए। इस हार के उपरांत अटारी वाले सरदार सहित भाई महाराज सिंघ और बाबा बिकरम सिंघ रावलपिंडी की ओर चले गए। जनरल गिलबर्ट 15000 जवानों व एक भारी तोपखाने सहित उन का पीछा कर रहा था। भाई साहिब ने अटारी वालियां को सलाह दी कि एक बार फिर रावलपिंडी या हसन अब्दाल में अंग्रेजों के साथ दो हाथ किये जाएं। परंतु अटारी वाले अब हौंसला हार बैठे थे। भाई साहिब की सलाह नजरअंदाज करते हुए 14 मार्च 1849 को उन्होंने रावलपिंडी के समीप अंग्रेजों के सामने आत्मसमर्पण करने का फैसला किया। भाई साहिब को अटारी वालिंया से बड़ी आशाएं थी। उन की इस करवाई से वे दुखी तो बहुत हुए, पर उन्होंने मिम्मत न हारी। उन्होंने फैसला कर लिया कि चाहे अकेले ही क्यों न लड़ना पड़े, वे अंग्रेजों के साथ अतिंम सांस तक लड़ेंगे।

अब तक पंजाब में अंग्रेजों का कब्जा लगभग पक्का हो गया था और भाई साहिब के बारे में सरकार चौकन्नी भी बहुत हो चुकी थी। भाई साहिब ने देख लिया कि अपनी गुरीला सरगर्मियों को वे अब पंजाब में सुरक्षित ढंग से नहीं चला पाएंगें इसलिए वे जम्मू की ओर निकल गए और उन्होंने अपने सेवकों को कहा कि अगली हिदायत मिलने तक वे बिखर कर भूमिगत कारवाई जारी रखें। जम्मू से वे भिंबर चले गए और फिर वहां से अखनूर चले गए। यहां से वे देवी वटाला चले गए। घने जंगलों से घिरे होने के कारण उनको यह क्षेत्र अपनी सरगर्मियों के लिए बहुत उचित लगा। उन्होंने देवी वटाला और चंबी के स्थानों पर डेरे रखे। पंजाब तथा जम्मू से सैंकड़ों की सख्या में आजादी के परवाने उनके पास एकत्र होने लगे। भाई साहिब ने अंग्रेजों के विरुद्ध अपना संघर्ष फिर आंरभ कर दिया। जम्मू कश्मीर के हाकिम इस समय देशद्रोही डोगरे थे। वे भाई साहिब की इस सरगर्मियों को कब देख कर फैसला किया। उन्होंने चंबी के समीप रामनगर के किले पर हमला करके उस को अपने कब्जे में ले लिया। डोगरों ने पूरी शक्ति से भाई साहिब को दबाने का यत्न किया। अगस्त 1849 में भाई साहिब के साथी एक बार फिर बिखर गए और भाई साहिब ने जम्मू कश्मीर छोड़ कर पंजाब में बटाला के समीप जसोवाल में आ डेरा लगाया।

भाई महाराज सिंघ हिम्मत हारने वाले नही थें । उन्होंने सारे पंजाब में अपने साथी फैला दिए ताकि वे अंग्रेजों के साथ हथियारबंद टक्कर के लिए माहौल तैयार कर सकें। उन के सेवक काबुल व कंधार के दूर दराज के इलाके तक ग्रुप बना कर फैल गए। भाई साहिब ने उन को हिदायत दी कि वे आशय की पूर्ति के लिए ग्रंथी सिंघों का सहयोग ले कर सिख जनसाधारण को लड़ाई के लिए लामबंद करें। यही नहीं भाई साहिब ने काबुल के अमीर दोस्त मुहम्मद खान के भाई सुलेमान मुहम्मद खान को भी मदद के लिए संदेश भेजा। स्वंय वह बिजली की तेजी से हुशियारपुर, कपूरथला, अमृतसर के सारे इलाके कुछ ही दिनों में घूम गए। अब उन्होंने सरकारी छावनियों पर आक्रमण करके अंग्रेजों को चने चबाने की खातिर खजाने लूटने की योजना बनाई। भाई साहिब को जनसाधारण की ओर से भरपूर सहयोग मिला। कोई भी दिन ऐसा न होता जब सौ आदमी उनके पास न आता। तभी भाई साहिब को काबुल के अमीर का संदेश मिला कि पठान सिखों की मदद को तैयार है पर पैसे की कमी के कारण वे तुरंत कोई कदम उठाने में असमर्थ हैं।

काबुल से हुई गोल -मोल न ने भी भाई साहिब के मन को विचलित न होने दिया। उन्होंने गुरु ग्रंथ साहिब जी की हजूरी में हुकमनामा लिया और 20 पौष 1849 का दिन होशियारपुर तथा जलंधर की छावनियों पर हल्ले करने के लिए निश्चित कर दिया। यह एलान करके वे टांडा, जहूरा, कंडोला, बालीवाल, आदमपुर, शाम चुरासी आदि के गांवों के दौरों पर निकल गए।

सरकार भी पल उन की सरगर्मी पर नजर रख रही थी। उस के जासूस जगह जगह पर उन्हें सुंघ रहे थे। 28 दिसंबर 1849 की शाम को एक जासूस जलंधर के डिप्टी कमिशनर, हैनरी वैनिस्टार्ट की कोठी पर हांफते हुए आया और उसने बताया कि भाई साहिब आदमपुर और शाम चुरासी के बीच एक खेत में छिपे बैठे हैं। मिन्टों में ही डिप्टी कमिशनर ने एक पार्टी सरपट घोड़े दौड़ाते हुए खेतों की ओर भेज दी। भाई साहिब का एक साथी अमीर सिंघ इस मुठभेड़ में मारा गया। भाई साहिब 21 साथियों सहित ग्रिफतार कर लिए गए। दुर्भाग्य से उनके पास आत्मरक्षा के लिए एक ही हथियार नहीं था। ऐसा होता तो शायद स्थिति कुछ और होती।

भाई साहिब की ग्रिफतारी के पश्चात उन की शनाखत करवा कर भी सरकार को मुश्किल से तसल्ली हुई कि यह खतरनाक बागी अब उन की कैद में है। अंग्रेज अधिकारियों को पूरी तसल्ली तब हुई जब उन्होंने देखा कि भाई साहिब को जेल ले जाते समय रास्ते में हर सिख ने सिर झुका कर भाई साहिब का सम्मान किया। ग्रिफतारी की खबर फलते ही हजारों सिख जेल की सीमा के अंदर एकत्र हो गए। सरकार को भय हो गया। कि यह भीड़ कहीं भाई साहिब को रिहा करवाने के लिए जेल पर हल्ला ही न कर दे। इस स्थिति से निपटने के लिए अंग्रेज प्रशासकीय बोर्ड के आदेशों के अनुसार भाई साहिब को जंजीरों में जकड़ा गया और उन की कैद कोठड़ी के बाहर सख्त दोहरा पहरा लगा दिया गया। यह पहरा दिन रात सरकार के अति विश्वास योग्य व्यक्ति देते थे। घुड़ सवारों का एक विशेष तैयार बर तैयार दस्ता जेल के आस पास चक्कर काटता रहता था। जेल की गारद की नफरी भी बढ़ा दी गई। वफादार यूरोपीयन सिपाहियों के विशेष दस्ते, जलंधर जेल में भेजे गए। फिर भी जिला अधिकारियों के ही नहीं, हिंदुस्तान के मालिक लार्ड डलहौजी की भी सांस सूखती ही रही कि कहीं कोई संकट न खड़ा हो जाय।

लार्ड डलहौजी भाई साहिब को जल्दी से जल्दी पंजाब से बाहर निकालने और उनको सख्त से सख्त सजा देने के पक्ष में था। इसलिए उस ने अपने विश्वास पात्र ब्रिगेडियर व्हीलर की ड्यूटी लगाई कि वह जलंधर से भाई साहिब को अपनी हिरासत में ले और उनको अलाहबाद पहुंचा दे जहां से उन को कलकत्ता भेजने के प्रबंध किये जायंगे। 30 जनवरी 1850 को व्हीलर ने डलहौजी के आदेश का पालन कर दिया। भाई साहिब जलंधर से भेज दिए गए। 19 अप्रैल को उन को कलकत्ता पहुंच दिया गया। सारी यात्रा के दौरान भाई साहिब को बेड़ियां पहनाए रखी गई। कलकत्ता के फोर्ट विलीयम में भी उनको कैद करते समय विशेष विश्वासपात्र अफसर, कर्नल वारन की निगरानी में सख्त प्रबंध किये गए। लगभग एक महीने बाद डलहौजी ने भाई साहिब को जलावतन करके सिंघापुर भेजने का आदेश दे दिया। 15 मई को वे समंदुरी जहाज पर चढ़ा दिए गए। गवर्नर जनरल के आदेश के अनुसार उनकी बेड़ियों को तभी उतारा गया जब जहाज दूर गहरे पानी में उतर गया। 9 जून को वे सिंघापुर पहुंचे और फिर सख्त कैद में फेंक दिए गए। हर समय करड़ी निगरानी के बावजूद अंग्रेज अफसर डरते कि भाई साहिब और उनके साथी जेल तोड़ कर भाग न जांय। इसलिए उन को जेल की ऊपर की मंजिल पर कैद किया गया! उनके कमरे की दोनों खिड़कियां ईटों से चिन कर बंद कर दी गई और बरामदे को एक मजबूत लोहे के दरवाजे से बाकी कमरों से बिल्कुल अलग कर दिया गया।

इस अंधकारमय काल कोठड़ी में दिन रात जंजीरों से जकड़े हुए भाई साहिब की सेहत तेजी से बिगड़ने लगी। कुछ महीनों में ही उन की नजर कमजोर होने लगी। उनको जोड़ों का दर्द होने लगा। भाई साहिब के कभी भी उफ न की। हर अत्याचार को उन्होंने हंसते हुए झेला । अगस्त 1851 की एक चिट्ठी में सिंघापुर तथा अन्य अधीनस्थ क्षेत्रों के अंग्रेज गवर्नर ने भारत सरकार को लिखा कि जब से भाई साहिब हमारी जेल में आए हैं उनका व्यवहार बिल्कुल ठीक रहा है। जिस तरीके से उन्होंने सभी मुसीबतें व कष्ट झेले हैं और विचलित नहीं हुए, वह सब कुछ सिख गुरूओं द्वारा दर्शाई गई राह के अनुकूल है।

भाई साहिब की सेहत दिनो-दिन गिरती रही। जनवरी 1853 में उन की आंखों की ज्योति बिल्कुल समाप्त हो गई और वे अंधे हो गए। वहां के रेजीमैंट कौंसल ने भारत सरकार को भाई साहिब को कुछ छूट देने के लिए सिफारशि की । उन्होंने कहा कि भाई साहब को कुछ हवारखोरी के लिए बाहर ले जाना जरुरी है चाहे ऐसा करने के लिए करड़ी निगरानी में ही क्यों न किया जाय। तत्कालीन अंग्रेजी भारत सरकार ने यह मामूली छूट भी देने से मना कर दिया। ऐसे घिनौने वातावरण में कोई कब तक जी सकता है। भाई साहिब अपने जीवन की आहुर्ति सिख राज्य की शमा पर तिल तिल कर देते रहे। 5 जुलाई 1856 को उन की जीवन ज्योति, हमें स्वतंत्रता तथा स्वाभिमान से जीने की प्रकाश ज्योति दे कर सदा के लिए बुझ गई। भाई साहिब का जीवन सिख कौम के लिए हमेशा प्रकाश स्तंभ बना रहेगा।